गिज्जूभाई का शैक्षिक चिंतन

कृष्ण कान्त*

गिज्जूभाई भारतीय इतिहास के एकमात्र ऐसे शिक्षाशास्त्री व दार्शनिक थे जिन्होंने पूर्व-प्राथमिक शिक्षा पर अत्यधिक बल दिया। वे इस क्षेत्र (पूर्व-प्राथमिक शिक्षा) के सफल प्रयोगकर्ता/व्यवसायी रहे। निस्संदेह वो एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने एक ऐसे विद्यालय का स्वप्न देखा जहां बच्चे खुशी, उत्साह और इच्छा से जा सकें। उनकी ये कल्पनाएँ उनके बाल मंदिर में साकार हुईं जो कि बच्चों के लिए स्वर्ग के समान था। गिज्जूभाई उन लोगों के लिए एक सशक्त प्रेरणा स्रोत हैं जो पूर्व-प्राथमिक, प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत हैं।

"जो पुस्तकें पढ़कर ज्ञान प्राप्त करेंगे, वे शिक्षक बनेंगे। जो बालकों को पढ़कर ज्ञान प्राप्त करेंगे, वे शिक्षाशास्त्री बनेंगे। शिक्षाशास्त्री के लिए हर एक बालक एक समर्थ, अद्वितीय और जीवित ग्रन्थ है।"- गिज्जूभाई

परिचय– गिज्जूभाई का पूरा नाम गिरिजाशंकर भगवान जी बधेका था। उनका जन्म 15 नवम्बर 1885 को सौराष्ट्र के चितलगांव में हुआ। उनके पिता का नाम श्री भगवानजी व माता का नाम श्रीमती कसीबा था। उन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा वाला में और मैट्रिकुलेशन की परीक्षा भावनगर से 1905 में पूरी की। इसकें पश्चात् उन्होंने श्यामलाल कॉलेज में दाखिला लिया, परन्तु 1907 में अपनी पढ़ाई अधूरी छोड़ आजिविका के लिए पूर्वी अफ्रीका चले गए। 1910 में अफ्रीका से आकर उन्होंने बम्बई से कानून की शिक्षा ग्रहण की। 1911 में उन्होंने जिला न्यायालय व 1912 में उच्च न्यायालय में वकालत का कार्य शुरू किया। उन्होंने दो बार शादी की, उनकी पहली शादी 1902 में हीराबेन से व उनकी मृत्यु के पश्चात् 1906 में जेदीबेन के साथ।

उनके व्यक्तित्व पर सबसे अधिक प्रभाव उनके चाचा हरगोविंद पांड्या का पड़ा। इन्होंने गिज्जूभाई के विचारों और चरित्र को दिशा दी। दूसरे व्यक्ति जिन्होंने गिज्जूभाई को प्रभावित किया वो थे एस.पी. एटीवेन्स, जिनके साथ गिज्जूभाई ने अफ्रीका में काम किया था। स्टीवेन्स ने उन्हें आत्म सहायता व आत्म निर्भरता सिखाई।

* *सहायक प्रवक्ता,* माता हरकी देवी महिला शिक्षा महाविद्यालय, औढां, सिरसा, हरियाणा

अपने पहले पुत्र नरेन्द्र भाई (जन्म 1913) की पढ़ाई की चिंता ने गिज्जूभाई का प्राथमिक शिक्षा से सम्पर्क करवाया। इस समय उन्होंने माती भाई अमीन के सहयोग से गुजराती भाषा में मॉण्टेसरी शिक्षण विधि पर आधारित पुस्तक प्रस्तुत की। इस कार्य ने उन्हें बाल शिक्षा की तरफ आकर्षित किया। 1915 में उन्होंने दक्षिणामूर्ति के निर्माण में सहयोग किया व भावनगर में एक छात्रावास प्रारम्भ किया। 1916 में उन्होंने वकालत छोड़ दी और दक्षिणामूर्ति में सहप्रबंधक के रूप में कार्य प्रारम्भ किया।

उन्होंने वहां के प्रबंधक श्री नानाभाई भट्ट का ध्यान वहां की शिक्षा व्यवस्थाओं की अनियमितताओं की ओर दिलाया। इन अनियमितताओं को दूर करने के लिए उन्हें दक्षिणामूर्ति के आचार्य का पद सौंपा गया।

इस पद पर कार्य करते हुए उन्हें आभास हुआ कि इस कार्य (प्राथमिक शिक्षा) का प्रारम्भ बहुत पहले से होना चाहिए और इसी विचार से 1920 में दक्षिणामूर्ति बालमंदिर पहला पूर्व-प्राथमिक विद्यालय उद्‌भव में आया।

सन् 1925 में गिज्जूभाई ने दक्षिणामूर्ति में पहला अध्यापन मंदिर (पूर्व-प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय) प्रारम्भ किया ताकि प्रशिक्षित अध्यापक तैयार किए जा सकें। इसकें साथ-साथ गिज्जूभाई ने बाल साहित्य जैसी छोटी कहानियां, बाल कविताएं, यात्रा वृतांत, शैक्षिक कहानियां आदि लिखे, जिनका बाद में कई भारतीय भाषाओं में अनुवाद भी किया गया।

1925 में गिज्जूभाई ने श्रीमती ताराबेन मोदाक के सहयोग से एक गुजराती मासिक शिक्षण पत्रिका का संपादन प्रारम्भ किया। इस पत्रिका ने अपने स्पष्टवादी व निर्भीक विचारों के कारण सम्पूर्ण गुजरात के तत्कालीन शिक्षा जगत में सनसनी फैला दी। गिज्जुभाई ने 1925 में भावनगर और 1928 में अहमदाबाद में शिक्षा जागरूकता से संबंधित जन-सम्मेलनों का आयोजन किया।

गिज्जूभाई ने दक्षिणामूर्ति में हरिजनों को प्रवेश की अनुमति प्रदान करवाई उन्होंने बारदोली सत्याग्रह के समय घर त्याग देने वाले किसान परिवारों के पुनर्वास के लिए भी कार्य किया। उन्होंने बाल सत्याग्रहियों की 'वानरसेना' नाम की टुकड़ियां तैयार कीं जिन्होंने 1930 के आंदोलन में सरकार की नाक में दम कर दिया था। 1930 में गिज्जूभाई ने प्रौढ़ शिक्षा का भी संचालन किया। 1936 में वैचारिक मतभेदों के चलते उन्होंने दक्षिणामूर्ति को छोड़ दिया और राजकोट में अध्यापन मंदिर (अध्यापक प्रशिक्षण केंद्र) की स्थापना की। लगातार कठोर मेहनत और अत्यधिक कार्य ने उनके स्वास्थ्य को खराब कर दिया। 23 जून 1939 को उनका देहांत हो गया। बच्चों के प्रति अगाध प्रेम के कारण, बच्चे उन्हें 'मूंछों वाली माँ' के नाम से संबोधित करते थे।

गिज्जूभाई के शैक्षिक विचार

गिज्जूभाई की रचनाओं और शैक्षिक प्रयोगों पर दृष्टि डालने पर हम देखते हैं कि उन्हें पूर्व-प्राथमिक/प्राथमिक व बाल मनौविज्ञान का गहन ज्ञान था। 'दिवास्वप्न' नामक अपनी रचना में उन्होंने इसे सिद्ध किया है। गिज्जूभाई के मुख्य शैक्षिक विचार इस प्रकार हैं-

- बच्चों का संसार / बाल संसार
  गिज्जूभाई ने अपनी गुजराती मासिक पत्रिका 'शिक्षण पत्रिका' में एक बाल संसार की कल्पना की है जो इस प्रकार है-

- बच्चों की खुशी में ही स्वर्ग है।
- बच्चों के स्वास्थ्य में ही स्वर्ग है।
- बच्चों के आनंद में ही स्वर्ग है।
- बच्चों की खेलपूर्ण पवित्रता में ही स्वर्ग है।
- बच्चों के गीतों व हास्य-विनोद में ही स्वर्ग है।

अपने इन्हीं विचारों के कारण उन्होंने विद्यालय को बालमंदिर की संज्ञा दी, जहां पर बच्चों का पूर्ण ध्यान रखा जाता था। वे बाल केंद्रित शिक्षा के पक्षधर थे।

- शिक्षा के मुख्य सिद्धान्त

  गिज्जूभाई की बाल केंद्रित शिक्षा निम्न मुख्य सिद्धान्तों पर आधारित थी-
  - शिक्षा बाल केंद्रित होनी चाहिए।
  - बालक की पवित्रता को अक्षुण्ण बनाए रखा जाना चाहिए।
  - अध्ययन-अध्यापन में बालक की अधिक से अधिक सहभागिता होनी चाहिए।
  - बालक को स्वस्थ वातावरण प्रदान किया जाए।
  - विद्यालय का वातावरण प्रेम व बाल समझ पर आधारित होना चाहिए।
  - बालक जीवंतता से सीखें।
  - बालक करके सीखें।

गिज्जूभाई ने अपने शैक्षिक विचारों का वर्णन सन् 1931 में लिखित अपनी पुस्तक "दिवास्वप्न" में किया है, जो कि गुजराती भाषा में लिखी गई। यह पुस्तक एक कहानी के रूप में है। अपनी इस पुस्तक में उन्होंने प्राथमिक शिक्षा के मुख्य पहलुओं पर प्रकाश डाला है जिसका वर्णन इस प्रकार है–

शिक्षण विधियां– गिज्जूभाई ने अपनी पुस्तकों "प्राथमिक शाला में भाषा शिक्षा" व "दिवास्वप्न" में शिक्षण विधियों का वर्णन किया है।

भाषा शिक्षण में सबसे पहले वाचन, इसकें पश्चात् रेखा चित्रण से लेखन। श्रुतलेखन से गति व सुनकर सही लिखने की आदत विकसित की जा सकती है। कविता शिक्षण लोकगीतों या ग्राम गीतों के माध्यम से गेयता, ताल, डोलन आदि की सहायता से होनी चाहिए। कविता पाठ में बालकों को न तो शब्दों के अर्थ लिखवाने चाहिए और न उन्हें यों ही अपनी ओर से अर्थ बताने चाहिए। कविता शिक्षण की सफलता का रहस्य तो यह जानने में है कि बालक काव्य में कितना रस लेने लगा है।

व्याकरण शिक्षण अकेले या पृथक रूप से किया जाने वाला कार्य नहीं है जो आमतौर पर शिक्षक कक्षाओं में करता है। अपनी पुस्तक 'दिवास्वप्न' में वे कहते हैं कि "मेरा विचार है कि व्याकरण की शिक्षा बड़ी उम्र में उन्हीं विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त हो सकती है, जो भाषा की शिक्षा में दिलचस्पी लेने लग गए हैं। प्राथमिक पाठशाला से तो यह विषय निकल ही जाना चाहिए।" (पृष्ठ 71)

दिवास्वप्न के व्याकरण शिक्षण के बारे में वे कहते हैं कि "मेरे विचार में परिभाषा वगैरह के पचड़े में न पड़कर पहले खेल विधि से परिचय कराया जा सकता है और धीरे-धीरे उन्हें इनकी शास्त्रीय परिभाषा भी बताई जा सकती है"। (पृष्ठ 75)

इतिहास शिक्षण कहानी के रूप में ही दिलचस्प बनता है। उसमें कहानीपन तो होना ही चाहिए, साथ ही मूल घटना के आस-पास

एक-सी कल्पित घटनाओं से सजाकर इतिहास पढ़ाना चाहिए। भूगोल शिक्षण में ग्लोब, नक्शों की सहायता से तथ्यों को प्रस्तुत करना चाहिए। गणित शिक्षण के लिए गिज्जूभाई मॉण्टेसरी पद्धति को ही ठीक समझते हैं।

चित्रकला शिक्षण में बच्चों को वस्तुओं के नाम या उनकी आकृति बनाने को कहना चाहिए। प्रारम्भ में भले ही छात्र सुंदर चित्र न बना सकें, परन्तु अभ्यास से वे ठीक चित्र बनाने लगेंगे।

खेल विधि द्वारा अधिकतर कार्य करवाया जाना चाहिए ताकि बच्चे आनंद के साथ सीखें। 'दिवास्वप्न' में गिज्जू भाई कहते हैं कि "खेल खेलने में ही तो आनंद आता है, यदि थोड़ा समय बरबाद भी हो जाए, पर परिणाम अच्छा और स्थायी आये, तो हानि ही क्या है"। (पृष्ठ 78)

गिज्जूभाई नाटक विधि को भी अध्ययन-अध्यापन में अपनाने की हिमायत करते हैं। अपनी पुस्तक 'दिवास्वप्न' में वे कहते हैं कि "छात्रों की आँखें खुली रहती हैं न? वे दर्जी, बढ़ई, कुम्हार, चूहों आदि को देखते हैं, उनकी बातें सुनते हैं। कहानी में उनका जो वर्णन आता है, उसे भी वे सुनते हैं। ईश्वर ने उन्हें कल्पना शक्ति दी है, इसलिए वे अनुभव और कल्पना का मेल मिला कर अभिनय करते है"। (पृष्ठ 68)

विद्यार्थी/बालक– गिज्जूभाई बालक को सामाजिक जगत व शिक्षा जगत का केंद्र बिन्दु मानते हैं। अपनी रचना 'दिवास्वन' में वे कहते हैं कि "बालक एक पूर्ण व्यक्ति है उसकी अपनी बुद्धि, भावनाएं, समझ और विचार हैं, उसकी अपनी कमजोरियां, पसंद, नापसंद हैं, हमें बच्चों की भावनाओं को समझना चाहिए", गिज्जूभाई एक जगह कहते हैं कि- "बालक, बालक है, प्रौढ़ नहीं"।

गिज्जूभाई बालक को अपनी गति से विकास करते हुए देखना चाहते थे, वे बालक को प्रकृति की गोद में रखते हुए पल्लवित-पुष्पित होते हुए देखना पसंद करते थे। वे इसमें बड़ों का कम से कम हस्तक्षेप चाहते थे। अपनी रचना बालदर्शन में वे कहते हैं- "बालक को खुद काम करने का शौक होता है, उसे रुमाल धोने दीजिए, उसे प्याला भरने दीजिए, उसे फूल सजाने दीजिए, उसे कटोरी मांजने दीजिए, उसे मटर की फली के दाने निकालने दीजिए, उसे परोसने दीजिए, बालक को सब काम खुद ही करने दीजिए। उसकी अपनी मर्जी से करने दीजिए, उसकी अपनी रीति से करने दीजिए।"

वे बालक को गतिमान मानते हैं जो कि कभी भी नहीं रुकता, वह अनवरत सीखता रहता है। अपनी रचना बालदर्शन में वे कहते हैं कि "बालक पल-पल में बढ़ने वाला प्राणी है, बालक की दृष्टि प्रश्नात्मक है, बालक का हृदय उद्गारात्मक है, बालक के व्याकरण में प्रश्न और उद्गार हैं, लेकिन पूर्णविराम कहीं नहीं है। बालक का मतलब है मूर्तिमन्त गति- अल्पविराम भी नहीं।"

गिज्जूभाई बड़ों को बच्चों के प्रति आत्मसुधार की सलाह देते हैं, वे अपनी रचना बालदर्शन में कहते हैं कि "बालक का सम्मान इसलिए कीजिए, कि हम में आत्मसम्मान की भावना जागे। बालक को डांटिए-डपटिए मत, जिससे डांटने-डपटने की हमारी गलत आदत छूटने लगे। बालक को मारिए-पीटिये मत जिससे मारने-पीटने की हमारी पशुवृति नष्ट हो सकें। इस तरह अपने को सुधारकर ही हम अपने बालकों का सही विकास कर सकेंगे।"

वातावरण– गिज्जूभाई मानते थे कि घर और विद्यालय का वातावरण बच्चे के लिए स्वर्ग के समान होना चाहिए। अपनी एक रचना में उन्होंने लिखा है कि "मैं आपसे (माता-पिता, अध्यापक से) पूछता हूँ कि कैसा हो अगर आप एक सुबह उठें और अपने आपको दैत्यों के संसार में पाएं। जहां बहुत ही विशाल दरवाजे और खिड़कियां हों, सीढ़ियों के पायदान इतने उंचे हों कि जिन पर चढ़ना मुश्किल हो, बरतन बहुत विशाल हों और तख्ते मनुष्य से दस गुना बड़े हों। बच्चे हमारे (बड़ों के) संसार में ऐसा ही महसूस करते हैं। जहां वस्तु बड़ों की आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार की जाती है। जहां बच्चे की केवल अनदेखी ही नहीं की जाती बल्कि उसे असहाय बनाया जाता है, जहां बच्चों को हर वस्तु के लिए बड़ों की तरफ देखना पड़ता है, जो कि उन्हें बहुत चिढ़ाता है, हम हमेशा हर वस्तु को बच्चों की पहुंच से दूर क्यों रखना चाहते हैं।"

गिज्जूभाई "बाला देवो भव:" के मूल मन्त्र पर विश्वास करते थे, और विद्यालय को बाल मंदिर के रूप में देखते थे, जहां बालक को भगवान की तरह पूजा जाता था अर्थात् उसका सम्पूर्ण ध्यान रखा जाता था।

पुस्तकालय– गिज्जूभाई विद्यालय में पुस्तकालय का होना अति अनिवार्य मानते हैं। उनके अनुसार पुस्तकालय ज्ञानार्जन का अहम् हिस्सा है। वे पाठ्यक्रम की पुस्तकों को कम महत्व देते थे परन्तु उससे कहीं ज्यादा व पुस्तकालय की दूसरी पुस्तकों को महत्व देते थे वे मानते थे कि विद्यालय में पुस्तकालय अवश्य होना चाहिए। दिवास्वप्न में गिज्जूभाई कहते हैं कि "मैं तो यह कहना चाहता हूं कि छात्रों से पाठ्यपुस्तकें खरीदवाई ही न जाएं और उन पुस्तकों की कीमत में अच्छी-अच्छी पढ़ने योग्य पुस्तकें खरीद ली जाएं और उनका एक पुस्तकालय बना दिया जाए।" (पृष्ठ 16)

'दिवास्वप्न' में वे कहते हैं कि "वर्ष के अन्त में पुस्तकें अगर बच्चे व उनके अभिभावक चाहे तो पुस्तकालय में छोड़ सकते हैं, इस तरह हर वर्ष पुस्तकालय समृद्ध होता जाएगा"। (पृष्ठ 17)

उनके अनुसार पुस्तकालय का प्रयोग करने के लिए प्रत्येक बच्चे को मौका मिलना चाहिए और हो सकें तो अध्यापक की देखरेख में पुस्तकालय का प्रबंध बच्चे ही संभालें।

परीक्षा प्रणाली– परीक्षा प्रणाली के बारे में गिज्जूभाई अलग तरह के विचार रखते थे, दिवास्वप्न में उन्होंने परीक्षाओं के बारे में कहा है कि "आज आप केवल छ:माही और सालाना परीक्षा लेते हैं, इसकें बदले मासिक परीक्षा लेना शुरू कीजिए। इससे परीक्षा का त्रास (भय) घटेगा। दूसरे परीक्षा होशियार विद्यार्थियों की प्रगति मापने के लिए नहीं, बल्कि कच्चे और कमजोर विद्यार्थियों को जगाने के लिए, उनकी कमजोरी का ठीक पता लगाने के लिए ली जाये", तीसरे जिन विद्यार्थियों को विश्वास हो कि वे अपने विषय को जानते हैं, उन्हें परीक्षा से मुक्त रखा जाये और परीक्षा के समय विद्यार्थियों को पाठ्यपुस्तकें देखकर उत्तर देने की स्वतंत्रता भी दे दी जाये।"

गिज्जूभाई परीक्षकों को भी प्रशिक्षण प्रदान करने की बात करते हैं, वे 'दिवास्वप्न' में कहते हैं कि "विद्यार्थियों की परीक्षा लेने के लिए, परीक्षक की परीक्षा लेनी चाहिए, यह देखने के लिए कि परीक्षक परीक्षा लेना जानता है या नहीं।"

धार्मिक शिक्षा– गिज्जूभाई ने अपनी पुस्तक 'दिवास्वप्न' में धार्मिक शिक्षा के बारे में भी विचार रखे हैं। वे कहते हैं कि "मेरी समझ में तो छोटे बच्चों को धर्मोपदेश न करना अच्छा है। उन्हें तो इस समय स्वस्थ शरीर, तन्दुरूस्त मन, निर्मल बुद्धि और कभी न थकने वाली क्रियाशक्ति की आवश्यकता है और आवश्यकता है उन्हें हर तरह बलवान बनाने की।" (पृष्ठ 49)

धार्मिक शिक्षा पर वे आगे कहते हैं कि "धर्म केवल जीभ पर ही नहीं रहता। धर्म तो एक जागृति है, जिसका अंत:स्थल में जागना ही उचित है। यह भावना तभी जागती है, जब मनुष्य को इसकी भूख लगती है। इसका भी अपना समय होता है, छात्रों पर यह असमय नहीं लादनी चाहिए।" (पृष्ठ 48)

धार्मिक शिक्षा का सही रूप क्या होना चाहिए इस पर गिज्जूभाई दिवास्वप्न में कहते हैं कि "मै तो यह कहता हूं कि हम धर्म को जीवन में उतारने का प्रयत्न करें। माता-पिता भी प्रयत्न करें और शिक्षक भी प्रयत्न करे। पाठ्यपुस्तक में दूसरी कथाओं के साथ धार्मिक पुस्तकों और प्रसंगों की कथाएं भी दी जा सकती हैं। बालकों के लिए शुरू के वर्षों में इतनी तैयारी पर्याप्त है। कर्मकाण्ड और श्लोकपाठ, धर्म-शिक्षण और धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन को हम भविष्य के लिए छोड़ सकते हैं।" (पृष्ठ 50)

निष्कर्ष– गिज्जूभाई देश के जाने-माने शिक्षक थे। पेशे से वकील होने के उपरान्त भी उन्होंने स्वयं शिक्षण किया। पाठशाला खोली। स्वानुभूत शिक्षण-अनुभव अर्जित किए और अपने अनुभवों को आने वाली पीढ़ियों के लिए लिपिबद्ध किया। वस्तुत: गिज्जूभाई बालकों के हृदय की गहराइयों को माप सकने वाले पहले भारतीय शिक्षाविद् थे। वे बालकों के मित्र, हितैषी और उनकी स्वतंत्रता के प्रबल पक्षधर थे। बीसवीं सदी के तीसरे दशक में परंपरा और रूढ़िग्रस्त भारतीय समाज में बालक की महिमा को प्रतिष्ठित करने वाले वे पहले व्यक्ति थे। उनके विचार वर्तमान समय में उतने ही तर्क संगत हैं जितने उस समय।

संदर्भ

बधेका गिज्जूभाई 1962, दिवास्वप्न, *बाल कल्याण समिति,* लखनऊ, उत्तर प्रदेश.

बधेका गिज्जूभाई, *बालदर्शन.*

एन.सी.ई.आर.टी. 2009, *गिज्जूभाई बधेका, सैकेंड मैमोरियल लेक्चर,* नयी दिल्ली.

गुप्ता एस. 2005, *एजुकेशन इन इमर्जिंग इंडिया,* शिप्रा पब्लिकेशन, दिल्ली.

स्वरूप सक्सेना एन.आर., कुमार संजय 2010, *शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय सिद्धान्त,* आर. लाल बुक डिपो, मेरठ.